

## कर्मण्यता

गुरुमाई चिद्विलासानन्द द्वारा २४ जून, २०१८ के लिए प्रदान किया गया सद्गुण

गरिमा बोरवणकर द्वारा लिखित व्याख्या

हर भाषा में, ऐसे शब्द हैं जो अर्थ की दृष्टि से इतने समृद्ध हैं कि विद्वज्जन अपना काफी समय यह पता लगाने में बिताते हैं कि वे शब्द किन-किन विभिन्न अर्थों को प्रकट करते हैं, उन शब्दों द्वारा कौन-से अर्थ सूचित होते हैं, उन शब्दों के अर्थों की बारीकियाँ क्या हैं और उनमें कौन-से सूक्ष्म भेद हैं। विद्वज्जन ऐसा इसलिए करते हैं ताकि उन शब्दों का और भी अधिक परिपूर्ण चित्र मिल सके और सूक्ष्मता से इसका परीक्षण किया जा सके कि उन शब्दों का प्रयोग किस प्रकार अपने संसार के प्रति हमारे दृष्टिकोण को आकार दे सकता है।

श्रीगुरुमाई ने २४ जून, २०१८ के लिए जो सद्गुण प्रदान किया है, वह है : 'कर्मण्यता'। यह एक सुन्दर शब्द है, एक ऊर्जस्वी शब्द है, ऐसा शब्द जिसके कई पहलू हैं और जिसमें अनेक अर्थ प्रचुरता से समाए हुए हैं। और यह एक अद्भुत सद्गुण है। यह हमारे जीवन के हर मौसम के लिए सटीक है। हम जो भी कर रहे हों, वह करते हुए हमें सदैव इस सद्गुण का बोध बनाए रखना चाहिए।

'कर्मण्यता' शब्द संस्कृत तथा हिन्दी, दोनों भाषाओं में है, और अन्य किसी भी भाषा में इसका पूरा-पूरा अर्थ समझाना शायद सम्भव नहीं है। इसका अर्थ है, 'वह भाव या अभिवृत्ति जो व्यक्ति को अपने अन्दर बनाए रखनी चाहिए जब वह कर्म में रत हो।' जब कर्मण्यता का अर्थ समझकर उसका परिपालन किया जाता है तो हमारे कर्म चमक उठते हैं। 'कर्मण्यता' शब्द में छिपे अर्थों की कई परतें प्रकट होने लगती हैं — इनमें से कुछ अर्थ हैं, लगन, सतर्कता, जीवन्तता, बल, तत्परता, विवेक और निष्ठा।

'कर्मण्यता' शब्द संस्कृत भाषा के 'कर्मण्य' शब्द से आता है, जिसका अर्थ है, वह जो लगन व सतर्कता के साथ, कुशलतापूर्वक कर्म करता है। भारत के कई शास्त्र जैसे ऋग्वेद, अथर्ववेद, ईशावास्योपनिषद्, भागवत्-पुराण, अग्निपुराण और अन्य शास्त्र कर्मण्यता की व्याख्या करते हैं और यह कहते हुए उसका

गुणगान करते हैं कि कर्म करने का 'यही' तरीका है; वे दृढ़ता से कहते हैं कि कर्मण्यतापूर्वक कर्म करना ही जीवन जीने का एकमात्र तरीका है।

'कर्मण्यता' शब्द पहली नज़र में, अत्यधिक कर्मशीलता को दर्शाता हुआ प्रतीत हो सकता है। तथापि, बाह्य स्तर पर किए गए कर्मों में कर्मण्यता का सद्गुण जितना अधिक स्पष्ट रूप में व्यक्त होता है, उतने ही अनेक सूक्ष्म गुण भी इसकी गहराई में समाए हुए हैं। कर्मण्यता में दोनों समाहित हैं — इसमें उत्साह भी है और धैर्य भी, सक्रियता भी है और शान्ति भी, इसमें जीवन्तता भी है और गाम्भीर्य भी, जोश भी है और मधुरता भी। यदि उत्साह हो पर धैर्य न हो तो इसका परिणाम अस्तव्यस्तता हो सकता है; यदि जोश हो पर मधुरता न हो तो इसके परिणामस्वरूप दूसरे लोग भयभीत हो सकते हैं। अपने कर्मों में कर्मण्यता निहित हो इसके लिए आपको इसके प्रत्यक्ष रूप में दिखने वाले गुणों और सूक्ष्म गुणों, दोनों को अपनाना होगा ताकि आप जिस तरीके से कार्य करते हैं, उसमें परिपक्वता हो, साथ ही आपके दृष्टिकोण में व चीज़ों की ओर आप जिस प्रकार कदम उठाते हैं उसमें भी परिपक्वता हो।

कर्म ब्रह्माण्ड का अभिन्न अंग है। कुछ कर्म ऐसे होते हैं जिनके विषय में हमें लगता है कि हम उन्हें अनायास ही, सहज-स्वाभाविक रूप में कर रहे हैं। सच कहा जाए तो, हो सकता है कि ये कर्म वास्तव में स्वाभाविक न हों। उन्हें कैसे करना है यह हमने कभी पहले सीख लिया और हम उन कर्मों को इतने लम्बे समय से करते आए हैं कि अब हम उनके अभ्यस्त हो चुके हैं। वे इतने स्वाभाविक बन चुके हैं कि उन्हें करने के लिए हमें हर बार कोई ख़ास विचार नहीं करना पड़ता।

फिर, कुछ कर्म ऐसे होते हैं — सांसारिक और आध्यात्मिक, दोनों ही प्रकार के — कि हर बार उन्हें करते समय हमें और भी अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होती है, चाहे हमने उन्हें इससे पहले कितनी ही बार क्यों न किया हो। ये कर्म भले ही हमारी दैनिक गतिविधियों का, यहाँ तक कि हमारी सत्ता का भाग भी क्यों न बन जाएँ, फिर भी हर बार उन्हें करते समय हमें अपना ध्यान पुनः केन्द्रित करना आवश्यक होता है। हमें इन कर्मों के संकल्प व उद्देश्य की ओर पुनः-पुनः लौटना आवश्यक होता है।

चाहे आप शिक्षक हों, जाने-माने बावर्ची हों, वास्तुकार हों या एक संन्यासी हों, आपको अपनी उस भूमिका का धर्म पूरी तरह से निभाना होगा। आपको अपने कर्मों को उस दिशा में मोड़ना ही होगा ताकि आपके कार्य का उद्देश्य पूरा हो सके। जो कर्म संकल्प व उद्देश्य के साथ किया जाता है उसमें, कर्मण्यता व उसके असंख्य प्रचुर अर्थ प्रकट होते हैं। और, यँही कोई भी संकल्प व उद्देश्य नहीं, पर ऐसा संकल्प व उद्देश्य जिसमें दूसरों के प्रति सद्भावना निहित हो। एक शिक्षक का उद्देश्य होता है यह सुनिश्चित करना कि उसके विद्यार्थी, संसार से जो मिला है उसके बदले में संसार को वापस देने के

महत्त्व को सीखें, उसे आत्मसात् करें व उसे अपने अन्दर उतारें। एक बावर्ची इस उद्देश्य से भोजन पकाता है कि भोजन स्वादिष्ट हो और साथ ही पोषक व तृप्तिदायक भी हो। एक वास्तुकार इस संकल्प व उद्देश्य के साथ एक भवन की योजना बनाता है और उसका निर्माण करता है कि वहाँ जो कोई भी निवास करे या काम करे उसके लिए वह भवन एक आश्रयस्थल हो। एक संन्यासी भौतिक सम्पदा व प्रतिष्ठा के प्रति आसक्ति का त्याग करता है ताकि वह एकाग्रचित्त होकर भगवान की व मानवता की सेवा कर सके।

क्या होता है जब कोई कर्म, कर्मण्यता के ज्ञान के बिना किया जाता है? अधिकांश समय जब हम कर्म करते हैं तो बदले में कुछ पाने की अपेक्षा करते हैं। 'इस हाथ लो उस हाथ दो' यानी बदले में कुछ मिलना, हमारा मार्गदर्शक सिद्धान्त बन जाता है। लेन-देन का यह रवैया कितनी ही बार हमें मुसीबत में डाल देता है, फिर भी हम उसी कहानी को बार-बार दोहराते रहते हैं, हम बार-बार उसी तरह का व्यवहार करते रहते हैं। अपनी ही आदतों के गर्त से बाहर निकलना हमें कठिन लगता है। और फिर हम इस उलझन में पड़ जाते हैं कि जैसा हमने सोचा था, चीज़ें वैसे क्यों नहीं हो रही हैं।

ऐसे समय पर, हमें अपने आप से पूछना चाहिए : क्या ऐसा हो सकता है कि हमारे कर्मों में वह उद्देश्य नहीं है जिसमें सद्भाव निहित हो? क्या ऐसा हो सकता है कि हम दूसरों के हित के बारे में नहीं सोच रहे हैं? इन प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए आत्म-विचार करना, सच्चाई से चिन्तन-मनन करना आवश्यक है।

यहाँ पर एक सूक्ष्म लेकिन महत्त्वपूर्ण बात समझना आवश्यक है। हो सकता है कि हम जो कर्म कर रहे हैं वह बाह्य तौर पर हर दृष्टि से दूसरों के लिए कल्याणकारी दिखाई देता हो। परन्तु, यदि हमने उस कर्म को प्रसिद्धि पाने, पुरस्कार या सराहना पाने, या कोई अन्य फल पाने की कामना के साथ बाँध दिया है तो हम कर्मण्यता के भाव को सच्चे अर्थ में अंगीकार नहीं कर रहे हैं। दूसरी ओर, जब हम कोई कर्म केवल इस भाव के साथ करते हैं कि उसे करना हमारा धर्म है तो हम निश्चितता के साथ कह सकते हैं कि कर्मण्यता अपनी झिलमिलाती तहों में जो भी समाए हुए है वह सब कुछ हमने पूरी तरह से अंगीकार कर लिया है।

श्रीभगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं :

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

तुम्हें कर्म करने का ही अधिकार है, परन्तु कर्म के फल पर अधिकार कदापि नहीं है।  
तुम्हें फलप्राप्ति के हेतु से कभी कर्म में रत नहीं होना चाहिए,  
और न ही तुम्हें अकर्मण्य रहने में अर्थात् कर्म न करने में आसक्त होना चाहिए।<sup>१</sup>

भगवान श्रीकृष्ण द्वारा दिया गया यह उपदेश सरल है, फिर भी गूढ़ है। ऐसा लग सकता है कि इसका अर्थ आपकी पकड़ से तनिक ही दूरी पर है; यह इतना निकट महसूस होता है कि आपको आशा है कि आप इसे समझ पाएँगे, फिर भी ऐसा लगता है कि यह आपकी पहुँच से थोड़ा बाहर ही है। तथापि, जब आप *सच में* इस सिखावनी का पूरा-पूरा अर्थ समझ पाते हैं तब आप जान जाते हैं कि यह सिखावनी आपके लिए व समस्त मानवजाति के लिए एक प्रकाश-स्तम्भ हो सकती है।

आप शायद सोचेंगे, “भले ही इस सिखावनी में असीमित शक्ति निहित है, फिर भी अभ्यास में उतारने के लिए क्या यह बहुत कठिन नहीं है?” हो सकता है आप यह सोचें, “मैं अपने कर्मों के फलों के प्रति भला अनासक्त कैसे रह सकता हूँ? मैं कोई भी कर्म कर ही कैसे पाऊँगा यदि मैंने उससे मिलने वाले फल के बारे में सोचा ही न हो? बदले में कुछ पाना क्या मेरा जन्मसिद्ध अधिकार नहीं है?” हाँ, यह सच है कि इस गूढ़ सिखावनी को समझने व उसके विभिन्न अर्थ प्रकट होने में समय लगेगा।

जब भगवान श्रीकृष्ण, महान योद्धा अर्जुन को उपदेश दे रहे थे कि उसे अपने कर्म के फल में आसक्त नहीं होना चाहिए तो अर्जुन भी उलझन में पड़ गया था, हैरान-परेशान हुआ था। अर्जुन एक योद्धा था, अतः उसका धर्म था, धर्मसंगतता से युद्ध करना। परन्तु स्वजनों के प्रति स्नेह ने उसे अपने धर्म के प्रति अन्धा बना दिया था। वह अपने शत्रुओं को हराकर उन पर विजय नहीं पाना चाहता था। अर्जुन जिस परिणाम को पाने की कोशिश कर रहा था, वह यह था कि उसे उनसे युद्ध *न करना* पड़े। यही वह फल था जिसमें वह आसक्त हुआ था, और इसी फल का प्रलोभन उसे सही कर्म करने से रोक रहा था।

भगवान श्रीकृष्ण धैर्य के साथ अर्जुन को अपनी शिक्षा देते रहे व उसे समझाते रहे, ताकि वह शिक्षा अर्जुन के हृदय में प्रवेश करे और अर्जुन वह सब कुछ सीखे जो उस सिखावनी का पालन करने के लिए आवश्यक था। भगवान ने अर्जुन से कहा कि उसे *हमेशा* वे कर्म करने चाहिए जिन्हें करना उसका कर्तव्य है। उन्होंने अर्जुन को समझाया कि उसके कर्मों का उद्देश्य है, संसार में धर्म की पुनः स्थापना करना, भले ही इसका अर्थ अपने प्रियजनों से युद्ध करना ही क्यों न हो।

यदि आप आरम्भ में इस सिखावनी के सच्चे अर्थ को स्पष्ट रूप में न समझ पाएँ तो भी निराश न हों। हो सकता है कि आप आतुरतावश अपने कर्मफल के प्रति आसक्त न होने की स्थिति तुरन्त पाना चाहें। वास्तव में जो करने की आवश्यकता है, वह है, उस स्थिति की ओर बढ़ना। वही आपकी साधना है।

आरम्भ में, यदि आप इस सिखावनी का सच्चा अर्थ न समझ पाएँ तो हताश न हों। सतत यह जानें कि इस सिखावनी के अमृत को प्राप्त किया जा सकता है। वास्तव में जो करना आवश्यक है, वह है, अपनी समझ का शुद्धिकरण। वही आपकी साधना है।

अतः सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है यह विश्वास रखना कि आप *अवश्य ही* वहाँ तक पहुँच सकते हैं, आप *अवश्य ही* थोड़ा-थोड़ा करके भगवान श्रीकृष्ण की सिखावनी के सार को समझना आरम्भ कर सकते हैं और उसे आत्मसात् कर सकते हैं। जब आप कर्मण्यता के मार्ग का अनुसरण करें तो हो सकता है कि शुरू में आपको परम सत्य की मात्र एक झलक ही मिले। परन्तु, जैसा कि आप जानते ही होंगे, जब आप किसी चीज़ के साथ बने रहते हैं — जब आप अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए दृढ़ता से परिश्रम करते हैं — तो कालान्तर में आप उस उद्देश्य को अवश्य ही पूरा करते हैं। वह निश्चित ही प्रकट होता है। परम सत्य की जो झलकियाँ आपको प्राप्त हुई हैं, वे जैसे-जैसे संचित होती जाती हैं, आपका परम सत्य का अनुभव अधिकाधिक स्थायी होता जाता है।

जब आप कर्मण्यता के सद्गुण को ध्यान में रखते हुए कर्म करते हैं तो क्या होता है, इसे दर्शाने वाला यह एक उदाहरण है : कोई भी चित्रकार, अपनी चित्रकारी की पुस्तक में बताए गए नियमों के अनुसार, या जैसा उसने अपने शिक्षकों से सीखा हो, उसके अनुसार चित्र बना सकता है जिसमें वह बिलकुल सही तकनीक का प्रयोग करता हो और यह सुनिश्चित करता हो कि उस चित्र में सभी कोण सही हों, सभी रेखाएँ और रंग भी सही हों तथा संरचना भी सही हो। और फिर, ऐसे चित्रकार होते हैं जिन्हें चित्रकारी की सही तकनीकों का ज्ञान होता है तथा वे उन्हें अपनाते भी हैं — और उनकी चित्रकारी, देखने वाले के हृदय को छू लेती है। वह देखने वाले के मस्तिष्क को उद्दीप्त कर देती है। ऐसे चित्रकारों की चित्रकारी में जादू होता है।

अतः आपके पास एक पेन्टिंग हो सकती है — या आपके पास 'एक पेन्टिंग' हो सकती है।

आप जो भी करें उसमें कर्मण्यता को अपनाएँ। कर्मण्यता के साथ आपका सम्बन्ध ऐसा होना चाहिए जैसा पानी और आर्द्रता के बीच होता है, जैसा ज्योति और तेज के बीच होता है — एक के बिना दूसरे का अस्तित्व ही नहीं हो सकता।

मैं श्रीगुरुमाई के शब्दों के साथ समापन करना चाहूँगी; ये शब्द मैंने गुरुमाई जी से सुने हैं और मुझे लगता है कि इन शब्दों में कर्मण्यता का सार पूर्णरूप में समाहित है :

यदि तुम्हारा केन्द्रण केवल उन्हीं कर्मों को करना है जिन्हें करने से तुम खुद अपने बारे में अच्छा महसूस करो और अपने लिए बहुत कुछ प्राप्त करो तो तुम कर्मयोग का मर्म नहीं समझ रहे हो।  
याद रखो : जैसे एक महान संगीतकार जब ढोल पर थाप देता है और उसकी नाद-तरंगों की गूँज सारे वातावरण को संगीत से भर देती है, ठीक वैसे ही तुम्हारे कर्म भी होने चाहिए।  
तुम्हारे कर्मों के स्पन्दनों से इस संसार में सौजन्यता का विस्तार होना चाहिए।

## कर्मण्यता के लिए अभिकथन

कर्मक्षेत्र में चलते हुए मैं कर्मण्यता का बोध बनाए रखूँ।

[अभिकथन — वे कथन जिन्हें जागरूकता के साथ बार-बार दोहराया जाता है ताकि वे हमारी चेतना में पैठ जाएँ।]

---

<sup>१</sup> श्रीभगवद्गीता, २.४७, *The Bhagavad Gita* से अंग्रेज़ी अनुवाद उद्धृत; अनुवाद : एकनाथ ईश्वरन् (Nogales, CA: Nilgiri Press, 2007)।